आर्य समाज के दस नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काय धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक और धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रथम माला] ओ३म् [ट्रैक्ट सं० ३८

स्वामी दयानन्द की दो भारी भूलें
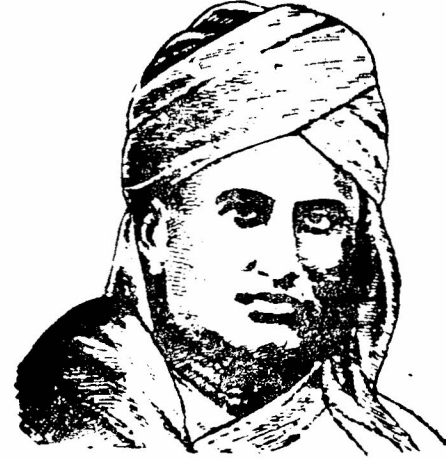
स्वामी दयानन्द सरस्वती

जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान ही रह जाते।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७]

सम्पादक :

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक :

गंगाप्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग

आर्य समाज, चौक, प्रयाग

सन् १९८६ ई० मूल्य : ५० पैसे

ओ३म्

स्वामी दयानन्द की दो भारी भूलें

आर्य्य समाज की ख्याति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और हिन्दू जाति के सभी प्रसिद्ध नेता मुक्तकण्ठ से इसके कामों की प्रशंसा करते हैं। स्वामी दयानन्द की महत्ता का प्रभाव भारत वर्ष के प्रत्येक प्रान्त में फैलता जा रहा है।

परन्तु लोगों की दो बड़ी शिकायतें हैं। वह कहते हैं कि यदि स्वामी दयानन्द इन भूलों को न करते या अब भी आर्य्य समाज इनका निराकरण कर दे तो समस्त भारतवर्ष शीघ्र ही आर्य्य समाज के झण्डे के नीचे आ जाय।

पहली भूल है "मूर्तिपूजा खण्डन"। स्वामी जी के जीवन में भी लोग उनकी विद्या की प्रशंसा सुनकर उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे, परन्तु मूर्तिपूजा का खण्डन सुनते ही उनसे शत्रुता करने लगते थे। एक मन्दिर की लाखों रुपये की गद्दी उनको मिलने वाली थी। परन्तु शर्त यह थी कि "मूर्ति का खण्डन छोड़ दो, चाहें स्वयं न पूजो"। परन्तु स्वामी दयानन्द ने भूल की और यह शुभ अवसर हाथ से खो दिया। यदि यह रुपया उनके पास होता तो वह बहुत सी

पुस्तकें लिख और छपवा सकते थे। बड़े-बड़े राजाओं को अपना शिष्य बना सकते थे। पण्डित वर्ग की शत्रुता से बच सकते थे। समस्त हिन्दू जाति को एक झण्डे के नीचे करके स्वराज्य प्राप्त कर सकते थे। हमने सैकड़ों लोगों को कहते सुना है कि आर्य्य समाज बड़ा अच्छा है परन्तु यही एक बात बुरी है कि मूर्ति का बेढब खण्डन करते हैं और देवी-देवताओं को नहीं मानते।

दूसरी भूल है वेदों को "ईश्वरीय ज्ञान मानना"। बाबू केशव चन्द्र सेन बंगाल के प्रसिद्ध ब्रह्मसमाज के नेता और बम्बई प्रान्त के प्रसिद्ध प्रार्थना समाज के कार्य्यकर्त्ता मूर्ति खण्डन के पक्ष में थे। वह स्वामी जी के प्रतिमापूजन-खण्डन की प्रशंसा करते थे, परन्तु वह वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे। इसलिये ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य्य समाज के साथ न मिल सके। यदि यह तीनों समाज मिल जाते तो देश का कितना उद्धार होता। थियोसोफिकल समाज (Theosophical Society) के प्रसिद्ध नेता कर्नल अल्कॉट (Colonel Olcatt) और मैडम ब्लैवेट्स्की (Madam Blavatasky) स्वामी जी को अपना पूज्य गुरु मानते थे और अपने को उनका तुच्छ सेवक बताने के लिये तैयार थे परन्तु वेदों के ईश्वरीय होने के प्रश्न ने उनको भी अप्रसन्न कर दिया और थियोसोफिकल सोसायटी सदा के लिये आर्य्य समाज से अलग हो गई। आज कल भी शिक्षित लोग

स्वयं आर्य्य समाज के सभासद् होने में यही आपत्ति करते हैं कि स्वामी दयानन्द ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मान कर आर्य्य समाज को संकुचित (Dogmatic) बना दिया।

स्वामी दयानन्द ने यह भूलें क्यों की? क्या वह हठी थे? नहीं, बाबू केशवचन्द्र सेन के कहने से ही उन्होंने संस्कृत के बजाय हिन्दी में बोलना आरम्भ किया था। भरी सभाओं में भी वह अपनी भूल झट स्वीकार कर लेते थे। फिर ऐसे महात्मा से भूलें कैसे हो गई? हम यहाँ इसी की मीमाँसा करते हैं।

पहले याद रखना चाहिये कि दो शिकायतें दो भिन्न-भिन्न दलों की ओर से हैं। केशवचन्द्र सेन आदि मूर्तिपूजा के बड़े विरोधी थे। यही एक कारण था कि उन्होंने स्वामी दयानन्द का इतना मान किया परन्तु यदि स्वामी दयानन्द इन लोगों के लिये वेदों के ईश्वरीय होने की बात को अलग भी रख देते तो भी समस्त हिन्दू जनता उनके साथ न हो जाती क्योंकि वह मूर्ति पूजा छोड़ना नहीं चाहती थी। एक दल मूर्ति पूजा खण्डन के पक्ष में और वेदों का विरोधी था दूसरा मूर्ति पूजा से चिढ़ता था परन्तु वेदों को मानता था। अतः यदि स्वामी दयानन्द चाहते भी तो दोनों दलों को प्रसन्न करना सम्भव न था।

हाँ, एक सभा ऐसी थी जिसने इन दोनों दलों की बात मान ली, वह थी थियोसोफिकल सोसायटी। उन्होंने शिक्षित समाज से

कहा "कुछ परवाह नहीं यदि तुम वेदों को नहीं मानते तो न मानो हमारी सभा के तुम सभासद हो सकते हो।" साधारण जनता से कहा "मूर्ति पूजा करने में क्या हानि है? यह तो एक प्रकार से जनता के लिये परमावश्यक है। यदि तुम मूर्ति पूजा छोड़ने के योग्य नहीं हो तो कदापि न छोड़ो। हमारी सभा के सभासद् हो जाओ।"

स्वामी दयानन्द या उनके अनुयायियों ने इस चातुर्य्य से काम नहीं लिया और न वह अब ले रहे हैं। इसीलिये संसार इनका शत्रु हो रहा है। क्या यह बड़ी भारी भूल नहीं है?

मूर्ति पूजा के प्रश्न को लीजिये। प्रथम तो प्रश्न यह है कि क्या मूर्ति पूजा से ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। हम 'मूर्ति पूजा' नामी ट्रैक्ट में दिखा चुके हैं और आर्य्य समाज के कई ग्रन्थों में भली प्रकार दर्शाया जा चुका है कि मूर्ति पूजा और ईश्वर प्राप्ति इन दोनों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिये जब स्वामी दयानन्द को विश्वास हो गया कि मूर्ति पूजा ईश्वर प्राप्ति में साधक नहीं किन्तु बाधक है तो उस समय वह किसी प्रकार भी मूर्ति पूजा खण्डन को नहीं छोड़ सकते थे। वह खुली आँखें देख रहे थे कि इसी मूर्ति पूजा के कारण लोग अपने परम पिता जगदीश्वर को भूल गये और पाषाण आदि की मूर्तियों को ही जगदम्बा और जगदीश्वर पुकारने लगे, फिर

अन्य निर्बल आत्माओं के समान वह संसार के साथ इस बात से सम-झौता कैसे करते ?

परन्तु प्रश्न यह है कि इस प्रकार के समझौते में क्या हानि थी ? यदि देश और जाति के सुधार के लिये ऐसा समझौता कर लिया जाता तो क्या बुराई हो जाती है। ऐसे महात्माओं की संख्या कम नहीं है जिनके वचनों में खण्डन पाया जाता है परन्तु उन्होंने कभी मन्दिरों या मूर्तियों के विरुद्ध इतना आन्दोलन नहीं किया। जहाँ प्रतिमा पूजन के खण्डन में उन्होंने बहुत कुछ लिखा वहीं गृहस्थों को मूर्ति-पूजन से रोका भी नहीं । कबीर, दादू, नानक, तुकाराम आदि कई ऐसे महापुरुष हुये । उन्होंने हिन्दू जाति को बहुत लाभ पहुँचाया और हिन्दू जाति कभी उनसे रुष्ट नहीं रही। मतभेद और बात है।

इसका कारण साधारणतया लोगों की समझ में नहीं आता। हम मानते हैं कि कबीर, तुकाराम आदि महात्माओं ने हिन्दू जाति का बहुत कुछ उपकार किया, परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि उनका यह उपकार क्षणिक था। वह हिन्दू जनता से मूर्तिपूजा के रोग को हटा नहीं सके। स्वयं उनके सामने और उनके पीछे उनके अनुयायियों तक में मूर्तिपूजा अपने भयंकर रूप के साथ बनी रही। दूसरे यह कि शायद इन महात्माओं ने

मूर्तिपूजा के रोग को इतना भीषण नहीं समझा कि उसके निवारण के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दें।

स्वामी दयानन्द मूर्ति पूजा को न केवल अनावश्यक ही किन्तु एक भयंकर रोग समझते थे, जिसके होते हुये सर्व प्रकार की उन्नति असम्भव थी। आजकल शिक्षित समाज की समझ में यह बात नहीं आती । वह स्वयं चाहे मूर्ति न पूजें परन्तु इतनी असंख्य जनता को मूर्ख कैसे बताया जा सकता है। उनका कथन है कि गर्हित मूर्ति पूजा को बन्द कर दो। जैसे कहीं बकरे मारे जाते हैं, कहीं भैंसों का बलि दिया जाता है। कहीं सुअर का घेंटा कटता है, यह अवश्य बुरी चीजें हैं । परन्तु यदि कोई पुरुष मन्दिर में जाकर श्रीकृष्ण या राम की मूर्ति बना कर उनका शुद्ध चिन्तन करता है तो इसको इतना घृणित क्यों माना जाय।

खेद से कहना पड़ता है कि इन लोगों ने मूर्ति पूजा की भीषणता पर कभी ध्यान नहीं दिया । वह यदि मूर्ति पूजा पर विश्वास नहीं भी रखते तो उसे इतना भयानक नहीं समझते । परन्तु जिसको यह लोग शुद्ध मूर्ति पूजा कहते हैं, वही घृणित मूर्ति पूजा का बीज रूप है। जब तक बीज नष्ट नहीं किया जायगा, उस समय तक वृक्ष की डालियों को काटते रहना बुद्धिमत्ता नहीं है । चाहे हिन्दू जाति मूर्ति पूजा छोड़कर

मिले या न मिले । हमारा विचार तो यह है कि जब तक इसमें मूर्तिपूजा का लवलेश उपस्थित है तब तक इसकी कुप्रथायें दूर नहीं हो सकती और यह काल के गाल से नहीं बच सकती । इसकी कौन सी बीमारी है जिसको आप बिना मूर्ति-पूजा खण्डन के दूर कर लेंगे ? इसका करोड़ों रुपया प्रति वर्ष मन्दिरों पर व्यय होता है । अनाथ चिथड़ों को तरसते हैं और मूर्तियाँ मखमल की रजाइयाँ ओढ़ती हैं । दीन-दुखिया भूख के मारे ईसाई और मुसलमान हुये जाते हैं और पत्थर की प्रतिमाओं के सामने हलुवा रक्खा जाता है । बीमारों की सुश्रूषा के लिये लोगों के पास समय नहीं परन्तु मूर्ति पूजा के लिए घण्टों व्यय किये जायें । रोग हो तो वैद्यों को छोड़कर मूर्ति के पास भागते हैं । यदि कोई आक्रमण हो तो बाहु-बल को त्याग कर मूर्ति का आश्रय लेते हैं । एक-एक मूर्ति पर नित्य झगड़ा होता है, लाठियाँ चलती हैं, मुकद्दमे होते हैं । यह सब मूर्ति पूजा की करतूतें हैं । फिर इसके अतिरिक्त जितने प्रकार के मिथ्या विचार (Superstitions) हैं उन सब की जड़ भी मूर्ति पूजा ही है । जो पुरुष पत्थरों से डर सकता है वह किससे नहीं डरेगा ? जिसके हृदय में झाड़-झंखाड़ के लिये पूज्य बुद्धि है वह किस जीवित शत्रु का सामना कर सकेगा ? फिर हिन्दुओं का अपने धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में चले जाने का कारण भी मूर्ति पूजा ही है । नित्य ईसाई तथा मुसलमान बहकाते हैं

और हिन्दुओं की संख्या कम होती जाती है ।

हिन्दुओं में परस्पर कलह का कारण भी मूर्ति पूजा ही है । कहीं शिव लिङ्ग की मूर्ति, कहीं विष्णु की मूर्ति एक दूसरे का परस्पर विरोध है । दक्षिण में वासतोल (व्यास की भुजा) की मूर्ति ही लिंगायतों और अन्य हिन्दुओं में शत्रुता का कारण है । स्पृश्य जाति के उद्धार में भी उस समय तक उन्नति न होगी जब तक लोग मूर्तियाँ पूजते रहेंगे । आजकल नित्य कोशिश हुआ करती है कि अस्पृश्यों को मन्दिरों में जाने की आज्ञा देनी चाहिये । पण्डे लोग घोर विरोध करते हैं और दहसत में आकर आज्ञा दे भी देते हैं तो फिर मन्दिरों को गंगा जल से शुद्ध कर लिया जाता है । यह कोशिशें व्यर्थ हैं । स्वामी दयानन्द की तरह स्पष्ट कह दो कि मूर्ति पूजा हटा दी जाय । जब अस्पृश्य जाति के घर में भी ईश्वर का प्रकाश मौजूद है तो इस प्रकाश के बल से ही वह समस्त संसार को जीत सकते हैं । यदि मन्दिरों का बखेड़ा इनके साथ लगा रहा तो इनमें कभी शक्ति नहीं आने की । मूर्तियाँ क्या सिखाती हैं ? शक्ति नहीं बल्कि निर्बलता । इसलिए इनके पूजक भी निर्बल ही रहते हैं और रहेंगे । मूर्ति पूजा खण्डन में स्वामी दयानन्द ने भूल नहीं की किन्तु विशेष धैर्य और प्राबल्य का परिचय दिया हैं ।

दूसरी भूल है वेदों के विषय में । यहाँ यह प्रश्न नहीं

कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है या नहीं। इसकी मीमांसा के लिये प्रो० बालकृष्ण जी का 'ईश्वरीय ज्ञान वेद' नामी पुस्तक देखिये। इसके विषय में सैकड़ों प्रमाण हैं। परन्तु यहाँ विषय की जातीय उपयोगिता का प्रश्न है। मेरा विश्वास है कि यहाँ भी स्वामी दयानन्द ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। यदि कहीं वह ब्रह्म समाज या प्रार्थना समाज और थियोसोफिकल सोसायटी के समान वेदों को छोड़ बैठते तो आर्य्य आर्यसमाज की नींव रेत पर होती। शायद उनको क्षणिक सफलता प्राप्त हो जाती। परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो आर्य्यसमाज के विशाल भवन की सच्ची आधार-शिला है तो वेद है। वेदों पर अब भी हिन्दू जाति की कुमारी अन्तरीप से गंगा पर्वत तक और अटक से कटक तक किसी न किसी रूप में श्रद्धा है। बंगाल के बंगाली भाषा बोलने वाले, मद्रास के तमिल और तेलगू भाषी, गुजरात तथा महाराष्ट्र के गुजराती और मराठी बोलने वाले सभी वेदों पर श्रद्धा रखते हैं। वेदों में ऐसे रत्न हैं जिनको पाकर हिन्दू जाति गये हुये गौरव को फिर प्राप्त कर सकती है। इन वेदों से श्रद्धा हटा कर आप इनको कहाँ ले जायेंगे ? आज ब्रह्मसमाज की अवस्था पर विचार कीजिये। वेदों को छोड़कर उन्होंने उपनिषदों का मान किया, फिर उसमें ईसाई धर्म से भी कुछ ऋण लिया गया फिर होते-होते अब यह एक खिचड़ी रह गई है। यही प्रार्थना समाज का हाल है।

यह ऐसे निराधार भवन हैं जो हिन्दू जाति के उत्थान से पूर्व ही नष्ट हो जायँगे। थियोसोफिकल सोसायटी की तो कथा ही अलग है। इनसे पूछो "तुम्हारे सिद्धान्त क्या हैं ?" कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं जो सर्वसाधारण को कुछ प्रकाश दे सकें। "हम सब में हैं और किसी में नहीं"। दक्षिण में सत्यशोधक समाज का भी यही हाल है। उनको अभिमान है कि हम संकुचित (Dogmatic) नहीं बनना चाहते। हम सत्य की खोज करते हैं। परन्तु उनको यह पता नहीं है कि सत्य का खोज करने वाले बिरले ही होते हैं। हमारे कई सत्यशोधक मित्र वेदों पर आक्षेप करते हैं। उन्होंने स्वयं वेद नहीं पढ़े। मैक्समूलर आदि से लेकर आक्षेप करते हैं। यह सत्यशोधकपन नहीं है। हम कम से कम स्वामी दयानन्द जैसे संस्कृतज्ञ ऋषि के आधार पर करते हैं परन्तु वह यूरोपियनों के आधार पर। अब पूछना चाहिये कि किसके आधार के सुदृढ़ होने की अधिक सम्भावना है। यूरोपियन लोगों का तो स्वार्थ भी हो सकता है, स्वामी दयानन्द का क्या स्वार्थ। फिर यदि एक स्वामी दयानन्द ऐसा कहते तो भी शायद कुछ आक्षेप का अवसर होता। यहाँ सभी दर्शनकार, सभी स्मृतिकार, सभी उपनिषद्कार, महाभारत, रामायण तथा गीता आदि के बनाने वाले सभी वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मान कर चलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वेदों की जड़ें पाताल तक पहुँची हैं और इनके काटने की कोशिश करना हिन्दू जाति की जड़ काटना है। जिनके लिए हमारा

आधुनिक शिक्षित वर्ग 'संकुचितता' बताता है उसी जड़ को हरा रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने अनेक कष्ट सहे, सैकड़ों महापुरुषों ने अपने रक्त से इसको सींचा और अनेकों ने आयुपर्यन्त तपस्यायें की। वेद हम तक सुगमता से नहीं आ गये। वेदों की रक्षा के लिये हिन्दू जाति को बहुत बड़ा मूल्य देना पड़ा है और मैं समझता हूँ कि इस समय भी इस ऋषि-ऋण को चुकाने के लिये उसमें पर्याप्त बल है जो हिन्दू जाति गिरे हुये समय में भी स्वामी दयानन्द जैसे तपस्वी को उत्पन्न करती है उसके मरने का कोई चिन्ह नहीं हैं। यह सब वेदों का ही फल है। संसार की अनेक जातियाँ उठीं और मर गई। पुरानी मिश्र जाति का अब कोई चिन्ह नहीं रहा, असीरिया वाले न जाने कहाँ लुप्त हो गये। कैल्डिया वालों का नामलेवा कोई नहीं रहा। यह सब इसी कारण हुआ कि इनके सुधारकों तथा नेताओं ने मूल को छोड़ कर वृक्ष की डालियों को सींचना आरम्भ कर दिया और क्षणिक लाभ के लिये स्थायी लाभ को हाथ से दे बैठे। इसी प्रकार इन जातियों ने किया होगा। यह भले आदमी यह नहीं समझते कि ऐसा करने से स्वराज्य तो मिलेगा नहीं, तुम्हारी जातीयता की जड़ अवश्य कट जायगी। यही प्रत्यक्ष हमारे सामने आ रहा है। मैं यह नहीं कहता कि क्षणिक लाभों की परवाह मत करो। मेरा कहना तो यह है कि उन क्षणिक लाभों की भी परवाह मत करो जो तुम्हारे चिरस्थायी लाभों को जड़ काटते हैं।

जिस समय हम विचार करते हैं कि स्वामी दयानन्द के सामने मूर्त्ति खण्डन और वेदों के त्यागने के लिये कितने भारी प्रलोभन थे। दो शर्तों पर समस्त भारत उनका अनुयायी होने के लिये तैय्यार था फिर भी उन्होंने उन क्षणिक प्रलोभनों पर लात मार दी तो हमारा सिर ऋषि के तपोबल के सामने स्वभावतः झुक जाता है। यदि स्वामी दयानन्द ऐसे न होते तो वह ऋषि कहलाने के कदापि योग्य न होते। उनमें और साधारण सुधारकों में कोई भेद न होता। अभी ऋषि दयानन्द की मृत्यु को ६५ वर्ष ही हुये हैं। अभी समय इतना निकट है कि हमको उनका वास्तविक स्वरूप दिखाई नहीं पड़ता। जब कई शताब्दियाँ व्यतीत हो जायँगी, उस समय ऋषि के गौरव को भली प्रकार समझ सकेंगे।

जो लोग आर्य्य समाज पर संकुचित (dogmatic) होने का दोष लगाते हैं, वह यह नहीं जानते कि अनियमता का नाम उदारता नहीं है। किसी समाज के संगठन के लिये निश्चित सिद्धान्तों की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हिन्दू जाति के वर्त्तमान असंगठन का बहुत बड़ा कारण यह है कि इसके सिद्धान्त निश्चित नहीं रहे। जो आया उसने मनमानी की और जाति के टुकड़े-टुकड़े हो गये। ऋषि दयानन्द ने इसी रोग का निराकरण किया और समस्त जाति को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया।

जब तक आर्य्यसमाज ऋषि के बताये हुये नियमों पर कटिबद्ध रहेगा, उसकी उन्नति ही होती जायगी। परन्तु जिस प्रकार ऋषि दयानन्द ने चिरस्थायी लाभ के लिये क्षणिक लाभों की परवाह नहीं की, इसी प्रकार आर्य्य-समाज को भी दृढ़ रहना चाहिये। जो लोग धूप और मेंह से बचने के लिए कपड़े के तंबू बना रहे हैं उन्हें बनाने दो। उनका इस समय अवश्य कम व्यय पड़ेगा परन्तु यह तम्बू एक दो वर्ष में ही फट जायेंगे। आर्य्यों को चाहिये कि स्वामी दयानन्द के आदेशानुसार पक्का भवन बनाने में लगे रहें। चाहे कितने ही दिन क्यों न लगें, चाहे कितना ही धन क्यों न व्यय हो परन्तु यदि लाभ देगा तो यहीं भवन देगा। इसी की छत के नीचे आने वाली सन्तान सुख से बैठ सकेगी। यदि कहीं आर्य्यों ने प्रलोभनों में फंसकर वेदों को छोड़ दिया तो न केवल भारतवर्ष और हिन्दू जाति की ही हानि होगी किन्तु समस्त भूमण्डल की समस्त मनुष्य जाति एक अपूर्व लाभ से वंचित रहेगी।

ईसाई और मुसलमान धर्म आजकल ऐसे चमत्कृत दिखाई पड़ते हैं पर कपड़े के तंबुओं से अधिक नहीं हैं। वर्षा और आँधी ने इनकी खूंटियों को अभी हिला दिया है। जब यह फटेंगे तो इनके नीचे बैठने वालों को कहाँ आश्रय मिलेगा। आर्य्यों! अपना भवन बनाने में लगे रहो जो इस समय तुम्हारी मूर्खता पर हँसते और स्वामी दयानन्द की भूलों पर आश्चर्य करते हैं वही किसी दिन तुमको आशीर्वाद और धन्यवाद देंगे, जैसे तुम प्राचीन ऋषियों को देते हो। हे ईश्वर!

बलमसि बलं मयि धेहि।

"आप बल हैं हमको बल दीजिये।"

विभाग द्वारा प्रकाशित ट्रैक्टों की सूची—

१६ पेजी ट्रैक्ट : मूल्य ५० पैसा—

१. सच्ची बात, २. अवतार, ३. दलितोद्धार, ४. भगवान श्री कृष्ण, ५. पितृ यज्ञ, ६. गाजी मियाँ की पूजा और हिन्दू

मूल्य : ४० पैसा प्रति—

१. सत्यार्थ प्रकाश क्यों पढ़ें ?, २. संस्कार, ३. घर की देवी, ४. वैदिक धर्म की विशेषतायें, ५. ईश्वर और उसकी पूजा, ६. मूर्तिपूजा।

मूल्य : ३५ पैसा प्रति—

१. राम भक्ति का रहस्य, २. आर्य समाज क्या है ? ३. आर्य समाज बुला रहा है, ४. हवन विधि, ५. संध्या संगीतिका ६. स्वामी दयानन्द की दो भारी भूलें, ७. हमारा बनाने वाला, ८. कलियुग, ९. यज्ञोपवीत या जनेऊ, १०. वेदोपदेश, ११. धर्म से होने वाली कल्पित हानियाँ, १२. भेड़िया धसान, १३. जीव क्या है ?, १४. हमारे बिछुड़े भाई, १५. दिशाशूल, १६. हमारा धर्म, १७. अद्भुत चमत्कार, १८. नशा से हानियाँ, १. आनन्द का स्रोत, २. धार्मिक भूल-भुलैया।

८ पेजी ट्रैक्ट : मूल्य २५ पैसा—

१. वेद क्या है ?, २. हिन्दू जाति की रक्षा के उपाय, ३. ईसाई क्यों बनते हो ?, ४. दुःखदायी दुर्व्यसन, ५. देवी पर वलि, २. हिन्दू संगठन का मूल मंत्र, ३. दान की दुर्गति।

मुद्रक : गणेश प्रेस, कीटगंज, इलाहाबाद—३